International Journal of Web of Multidisciplinary Studies
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal)
website: https://ijwos.com OPEN ACCESS E-ISSN : 3049-2424
Volume 3 Issue 8 , August 2026 DOI: https://doi.org/10.71366/ijwos03082645823

भारत – दक्षिण एशिया संबंधों का औपनिवेशिक आयाम का विश्लेषण

रश्मि कुमारी [1] डॉ. मुकेश कुमार [2]
[1] शोधार्थी वि. वि. इतिहास विभाग
[2] असिस्टेंट प्रोफेसर – विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग मुरारका कॉलेज, सुल्तानगंज टी. एम. बी. यू. भागलपुर

Article Info

Article History:

Published: 12 August 2026

Publication Issue:
Volume 3, Issue 8
August-2026

Page Number:
190-198

Corresponding Author:
Rashmi Kumari

Abstract:

भारत–दक्षिण एशिया संबंधों के औपनिवेशिक आयाम का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि इस क्षेत्र की समकालीन भू–राजनीति, सीमा विवाद, सुरक्षा चुनौतियाँ और अंतर–राज्यीय अविश्वास वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों की दीर्घकालिक संरचनात्मक देन हैं। औपनिवेशिक शासन के दौरान ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश क्राउन ने पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को एक एकीकृत आर्थिक व सामरिक बाजार के रूप में संचालित किया, परंतु अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए 'बांटो और राज करो' की नीति, नस्लीय विभाजन तथा धार्मिक–जातीय ध्रुवीकरण को बढ़ावा दिया। स्वतंत्रता के समय बिना किसी व्यापक जनसहमति या भौगोलिक यथार्थ का ध्यान रखे खींची गई मनमानी औपनिवेशिक सीमाओं – जैसे डूरंड रेखा और रेडक्लिफ रेखा ने उपमहाद्वीप की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक निरंतरता को रातों–रात विखंडित कर दिया। इसके परिणामस्वरूप, उत्तर–औपनिवेशिक काल में भारत और उसके पड़ोसियों (जैसे पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका व अफगानिस्तान) के बीच सीमा विवाद, शरणार्थी संकट, अल्पसंख्यकों के अधिकार और नदी जल बंटवारे जैसी जटिल चुनौतियाँ उत्पन्न हुईं। स्वतंत्रता के बाद भारत ने ब्रिटिश राज से एक केंद्रीकृत सुरक्षा–उन्मुख दृष्टि और विशाल भौगोलिक स्थिति विरासत में प्राप्त की, जिससे पड़ोसी देशों में अक्सर भारत के 'बड़े भाई' वाले प्रभुत्व की आशंकाएँ उपजीं, जबकि भारत इन ढांचों के माध्यम से क्षेत्रीय स्थिरता बनाए रखना चाहता था। वर्तमान परिदृश्य में, जहाँ अन्य बाह्य शक्तियाँ दक्षिण एशिया में अपना प्रभाव बढ़ा रही हैं, भारत अपने साझा औपनिवेशिक इतिहास, सांस्कृतिक जुड़ाव और औपनिवेशिक काल की एकीकृत अवसंरचनात्मक प्राथमिकताओं को 'पड़ोस प्रथम' नीति, क्षेत्र में सभी के लिए सुरक्षा और विकास पहल तथा क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण का आधार बनाने का प्रयास कर रहा है। निष्कर्षतः, यह अध्ययन रेखांकित करता है कि दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग की विफलता और सफलता को समझने के लिए औपनिवेशिक विरासत का आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन और औपनिवेशिक मानसिकता का वि–औपनिवेशीकरण अत्यंत आवश्यक है।

Keywords: औपनिवेशिक विरासत, उत्तर–औपनिवेशिक भू–राजनीति, सीमा विवाद

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य भारत–दक्षिण एशिया संबंधों के औपनिवेशिक आयामों का ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक एवं समग्र अध्ययन करना है, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की राजनीतिक, आर्थिक, सामरिक तथा प्रशासनिक नीतियों ने दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय संरचना, पारस्परिक संबंधों तथा शक्ति–संतुलन को किस प्रकार प्रभावित किया। अध्ययन का उद्देश्य यह भी है कि औपनिवेशिक शासन द्वारा निर्मित सीमाओं, प्रशासनिक व्यवस्थाओं, व्यापारिक नेटवर्क, संचार व्यवस्था, सामरिक हितों तथा कूटनीतिक नीतियों का भारत और उसके पड़ोसी देशों के संबंधों पर पड़े दीर्घकालिक प्रभावों का गहन विश्लेषण किया जाए। साथ ही, भारत के विभाजन, सीमा–निर्धारण, औपनिवेशिक कूटनीति, 'फूट डालो और शासन करो' की नीति, साम्राज्यवादी आर्थिक हितों तथा क्षेत्रीय शक्ति–राजनीति के परिणामस्वरूप उत्पन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवर्तनों का सम्यक् मूल्यांकन करना भी इस अध्ययन का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। यह शोध इस तथ्य की भी पड़ताल करेगा कि औपनिवेशिक विरासत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत तथा दक्षिण एशिया के अन्य देशों के मध्य सहयोग, संघर्ष, सीमा–विवाद, सुरक्षा, व्यापार, जल–संसाधन, प्रवासन तथा क्षेत्रीय संगठनों की कार्यप्रणाली को किस प्रकार प्रभावित किया तथा वर्तमान समय की भू–राजनीतिक चुनौतियों में इसकी क्या प्रासंगिकता है।[1] इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अध्ययन ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक तथा तुलनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है, जिसके माध्यम से विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं, नीतियों तथा प्रक्रियाओं का क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाएगा। शोध में प्राथमिक

Copyright © 2025 The Author(s) : This is an open access article under the CC BY license (http://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/)

एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का व्यापक उपयोग किया जाएगा। प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत औपनिवेशिक शासनकाल के आधिकारिक अभिलेख, सरकारी दस्तावेज, प्रशासनिक प्रतिवेदन, संधियाँ, पत्राचार, संस्मरण, संसदीय अभिलेख तथा समकालीन दस्तावेजों का उपयोग किया जाएगा, जबकि द्वितीयक स्रोतों में प्रामाणिक पुस्तकें, शोध–पत्र, शोध–प्रबंध, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाएँ, प्रतिवेदन तथा अन्य विश्वसनीय संदर्भ सामग्री सम्मिलित होगी।[2] उपलब्ध स्रोतों का आलोचनात्मक, तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण करते हुए औपनिवेशिक नीतियों, साम्राज्यवादी रणनीतियों, सीमा–निर्माण, आर्थिक हितों, सांस्कृतिक प्रभावों तथा स्वतंत्रता–उपरांत भारत एवं दक्षिण एशियाई देशों के पारस्परिक संबंधों पर पड़े उनके दीर्घकालिक प्रभावों का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाएगा। यह अध्ययन न केवल औपनिवेशिक विरासत की ऐतिहासिक समझ को समृद्ध करेगा, बल्कि समकालीन भारत–दक्षिण एशिया संबंधों के विकास, क्षेत्रीय सहयोग, शांति, स्थिरता तथा भविष्य की नीतिगत संभावनाओं को समझने के लिए भी एक महत्वपूर्ण अकादमिक आधार प्रदान करेगा।[3]

दक्षिण एशिया विश्व का एक महत्वपूर्ण भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा सामरिक क्षेत्र है, जिसमें सामान्यतः भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, मालदीव और अफगानिस्तान को सम्मिलित किया जाता है। यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही सांस्कृतिक आदान–प्रदान, व्यापारिक संपर्क, धार्मिक परंपराओं, भाषाई विविधता तथा सामाजिक–सांस्कृतिक अंतःक्रियाओं का केंद्र रहा है। यद्यपि दक्षिण एशिया के देशों की अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पहचान रही है, फिर भी उनके मध्य सभ्यता, धर्म, संस्कृति, आर्थिक गतिविधियों तथा राजनीतिक संपर्कों की गहरी समानताएँ विद्यमान रही हैं।[4] आधुनिक अर्थों में ''दक्षिण एशिया'' की अवधारणा का विकास औपनिवेशिक काल में अधिक स्पष्ट रूप से हुआ, जब ब्रिटिश साम्राज्य ने प्रशासनिक सुविधा, सामरिक नियंत्रण, आर्थिक दोहन तथा राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के उद्देश्य से इस पूरे क्षेत्र को एक व्यापक औपनिवेशिक इकाई के रूप में व्यवस्थित किया। ब्रिटिश शासन ने सीमाओं का पुनर्निर्धारण, प्रशासनिक पुनर्गठन, राजस्व व्यवस्था, परिवहन एवं संचार नेटवर्क, रेलमार्ग, बंदरगाह, डाक एवं तार व्यवस्था तथा औपनिवेशिक कानूनों के माध्यम से इस क्षेत्र की राजनीतिक एवं आर्थिक संरचना को अपने हितों के अनुरूप परिवर्तित किया।[5] औपनिवेशिक नीतियों के कारण पारंपरिक व्यापारिक मार्गों, स्थानीय उद्योगों, कृषि व्यवस्था तथा सामाजिक संबंधों में व्यापक परिवर्तन आए, जिससे क्षेत्रीय असमानताओं और आर्थिक निर्भरता की नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं। ब्रिटिश साम्राज्य ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति, सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व, सीमाओं के कृत्रिम निर्धारण तथा रियासतों और प्रांतों के पुनर्गठन के माध्यम से ऐसी राजनीतिक परिस्थितियाँ निर्मित कीं, जिनका प्रभाव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारत तथा दक्षिण एशिया के अन्य देशों के पारस्परिक संबंधों पर निरंतर बना रहा। भारत का विभाजन, सीमा–विवाद, प्रवासन, सुरक्षा संबंधी चुनौतियाँ तथा क्षेत्रीय अविश्वास उसी औपनिवेशिक विरासत की महत्वपूर्ण देन माने जाते हैं। इस प्रकार दक्षिण एशिया की अवधारणा केवल भौगोलिक सीमा तक सीमित नहीं है,[6] बल्कि यह औपनिवेशिक शासन द्वारा निर्मित राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक तथा सामरिक संरचनाओं से भी गहराई से जुड़ी हुई है। इसलिए भारत–दक्षिण एशिया संबंधों को समझने के लिए औपनिवेशिक संदर्भ का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि वर्तमान क्षेत्रीय राजनीति, आर्थिक सहयोग, कूटनीतिक संबंधों तथा सामरिक चुनौतियों की जड़ें औपनिवेशिक काल की नीतियों, संरचनाओं और सत्ता–व्यवस्थाओं में निहित हैं।[7]

ब्रिटिश भारत और नेपाल के संबंध दक्षिण एशिया के औपनिवेशिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय हैं, जिनमें सामरिक हित, कूटनीतिक समझौते, आर्थिक संपर्क तथा राजनीतिक संतुलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गोरखा शक्ति के विस्तार के साथ नेपाल का प्रभाव हिमालयी क्षेत्रों में बढ़ने लगा, जिससे ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और नेपाल के मध्य सीमा एवं प्रभुत्व को लेकर तनाव उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप 1814–1816 का आंग्ल–नेपाल युद्ध हुआ, जिसका समापन 1816 की सुगौली संधि के साथ हुआ।[8] इस संधि के अंतर्गत नेपाल को कुमाऊँ, गढ़वाल, सिक्किम के कुछ भाग तथा तराई के विस्तृत भूभाग ब्रिटिश भारत को सौंपने पड़े, जबकि ब्रिटिश सरकार ने नेपाल की संप्रभुता को औपचारिक रूप से स्वीकार करते हुए काठमांडू में ब्रिटिश रेजिडेंट की नियुक्ति सुनिश्चित की। यद्यपि नेपाल प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश उपनिवेश नहीं बना, फिर भी उसकी विदेश नीति, सामरिक निर्णयों तथा बाहरी संपर्कों पर ब्रिटिश प्रभाव निरंतर बढ़ता गया। ब्रिटिश शासन ने नेपाल को हिमालयी सुरक्षा–घेरा (ठनर्मित ैजंजम) के रूप में विकसित किया, जिससे तिब्बत और चीन की दिशा से संभावित सामरिक चुनौतियों का सामना किया जा सके। इस नीति के कारण नेपाल ब्रिटिश साम्राज्य की उत्तरवर्ती सुरक्षा रणनीति का अभिन्न अंग बन गया।[9] ब्रिटिश शासनकाल में गोरखा सैनिकों की वीरता और सैन्य दक्षता को देखते हुए उन्हें ब्रिटिश भारतीय सेना में बड़े पैमाने पर भर्ती किया गया, जिसने दोनों पक्षों के संबंधों को एक नया आयाम प्रदान किया। प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध सहित अनेक सैन्य अभियानों में गोरखा सैनिकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिसके कारण ब्रिटिश शासन और नेपाल के मध्य सैन्य सहयोग और अधिक सुदृढ़ हुआ। आर्थिक दृष्टि से भी भारत और नेपाल के मध्य व्यापारिक संपर्क, सीमा–पार आवागमन तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान निरंतर जारी रहे, यद्यपि इन पर ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।[10] ब्रिटिश प्रशासन ने हिमालयी व्यापार मार्गों, सीमावर्ती क्षेत्रों तथा प्राकृतिक संसाधनों को अपने साम्राज्यवादी हितों के अनुरूप नियंत्रित करने का प्रयास किया, जिससे नेपाल की आर्थिक निर्भरता भारत के साथ और अधिक गहरी

होती गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी भारत–नेपाल संबंधों में खुली सीमा, आर्थिक सहयोग, सांस्कृतिक निकटता, सुरक्षा साझेदारी तथा पारस्परिक निर्भरता जैसी अनेक विशेषताएँ उसी औपनिवेशिक कालीन विरासत से प्रभावित दिखाई देती हैं। इस प्रकार ब्रिटिश भारत और नेपाल के संबंध प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन के बजाय सामरिक संरक्षण, कूटनीतिक प्रभाव, सैन्य सहयोग तथा आर्थिक संपर्कों पर आधारित थे, जिन्होंने आधुनिक भारत–नेपाल संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं संरचनात्मक स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया।[11]

ब्रिटिश भारत और भूटान के संबंध औपनिवेशिक काल में मुख्यतः सामरिक, कूटनीतिक तथा व्यापारिक हितों पर आधारित थे। हिमालयी क्षेत्र में स्थित भूटान को ब्रिटिश साम्राज्य उत्तर–पूर्वी भारत की सुरक्षा तथा तिब्बत के साथ अपने राजनीतिक और व्यापारिक हितों की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण 'बफर राज्य' मानता था। सीमावर्ती क्षेत्रों, विशेषकर डुआर्स क्षेत्र, को लेकर दोनों पक्षों के बीच संघर्ष हुआ, जिसके परिणामस्वरूप 1864–65 का आंग्ल–भूटान युद्ध हुआ। इसके पश्चात 1865 की सिनचुला संधि के अंतर्गत भूटान को डुआर्स सहित कुछ क्षेत्र ब्रिटिश भारत को सौंपने पड़े तथा बदले में उसे वार्षिक आर्थिक अनुदान प्रदान किया गया। यद्यपि भूटान ब्रिटिश साम्राज्य का प्रत्यक्ष उपनिवेश नहीं बना, फिर भी उसकी विदेश नीति और सामरिक गतिविधियों पर ब्रिटिश प्रभाव लगातार बढ़ता गया।[12] 1910 की पुनाखा संधि के माध्यम से भूटान ने अपने बाह्य संबंधों में ब्रिटिश सरकार की सलाह स्वीकार की, जबकि उसकी आंतरिक स्वायत्तता को बनाए रखा गया। औपनिवेशिक काल में दोनों के मध्य सीमावर्ती व्यापार, सांस्कृतिक संपर्क तथा कूटनीतिक संबंध निरंतर विकसित हुए, किन्तु इनका संचालन ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के अनुरूप होता रहा। स्वतंत्रता के पश्चात भारत–भूटान संबंध इसी ऐतिहासिक विरासत के आधार पर मैत्री, पारस्परिक विश्वास, सुरक्षा सहयोग तथा आर्थिक साझेदारी के रूप में विकसित हुए। इस प्रकार ब्रिटिश भारत और भूटान के संबंध प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन के बजाय सामरिक संरक्षण, कूटनीतिक प्रभाव और सीमावर्ती नियंत्रण पर आधारित थे, जिन्होंने आधुनिक भारत–भूटान संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया।[13]

ब्रिटिश भारत और श्रीलंका (तत्कालीन सीलोन) के संबंध औपनिवेशिक काल में प्रशासनिक, आर्थिक, सामरिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण थे। 1796 में ब्रिटिशों ने सीलोन पर अधिकार स्थापित किया और 1815 में संपूर्ण द्वीप को अपने नियंत्रण में लेकर उसे एक पृथक उपनिवेश के रूप में विकसित किया, जबकि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का प्रमुख प्रशासनिक एवं आर्थिक केंद्र था। दोनों क्षेत्रों के बीच समुद्री व्यापार, प्रशासनिक समन्वय तथा सामरिक सहयोग निरंतर बना रहा। ब्रिटिश शासन ने चाय, कॉफी और रबर के बागानों के विकास के लिए भारत, विशेषकर दक्षिण भारत से बड़ी संख्या में श्रमिकों को सीलोन भेजा, जिससे दोनों क्षेत्रों के बीच जनसंख्या, संस्कृति और आर्थिक संबंधों में गहरा जुड़ाव स्थापित हुआ।[14] ब्रिटिश साम्राज्य ने हिंद महासागर में अपने सामरिक हितों की रक्षा के लिए भारत और सीलोन को एक संयुक्त रणनीतिक क्षेत्र के रूप में विकसित किया, जिससे समुद्री मार्गों और व्यापारिक गतिविधियों पर उसका नियंत्रण सुदृढ़ हुआ। यद्यपि सीलोन का प्रशासन भारत से अलग था, फिर भी उसकी आर्थिक नीतियाँ, व्यापारिक संरचना तथा सामरिक व्यवस्था ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों से संचालित होती थीं। स्वतंत्रता के पश्चात भी भारतीय मूल के तमिलों का प्रश्न, समुद्री संपर्क, व्यापार तथा सांस्कृतिक संबंध भारत–श्रीलंका संबंधों के महत्वपूर्ण आधार बने रहे। इस प्रकार ब्रिटिश भारत और श्रीलंका के औपनिवेशिक संबंधों ने दोनों देशों के आधुनिक राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[15]

ब्रिटिश भारत और बर्मा (वर्तमान म्यांमार) के संबंध औपनिवेशिक काल में मुख्यतः सामरिक, प्रशासनिक, आर्थिक तथा व्यापारिक हितों पर आधारित थे। आंग्ल–बर्मा युद्धों (1824–26, 1852 तथा 1885) के परिणामस्वरूप ब्रिटिशों ने क्रमशः पूरे बर्मा पर अधिकार स्थापित किया और 1886 में उसे ब्रिटिश भारत का एक प्रांत बना दिया। इसके बाद बर्मा का प्रशासन भारत के गवर्नर–जनरल के अधीन संचालित होने लगा तथा दोनों क्षेत्रों के बीच प्रशासनिक, आर्थिक और व्यापारिक संबंध अत्यंत घनिष्ठ हो गए।[16] ब्रिटिश शासन ने बर्मा के चावल, सागौन (टीक), तेल तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए भारत से बड़ी संख्या में श्रमिकों, व्यापारियों, शिक्षकों और प्रशासनिक अधिकारियों को वहाँ भेजा, जिससे दोनों क्षेत्रों के बीच जनसंख्या, श्रम प्रवासन और आर्थिक संपर्कों का तीव्र विस्तार हुआ। रंगून (यांगून) भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया के मध्य एक प्रमुख व्यापारिक एवं प्रशासनिक केंद्र के रूप में विकसित हुआ, जहाँ भारतीय व्यापारियों और श्रमिकों की उल्लेखनीय उपस्थिति थी।[17] ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत और बर्मा को अपनी पूर्वी सामरिक नीति का अभिन्न अंग बनाकर चीन तथा दक्षिण–पूर्व एशिया में अपने प्रभाव का विस्तार किया और समुद्री व्यापार मार्गों पर नियंत्रण को सुदृढ़ बनाया। साथ ही, रेलवे, बंदरगाहों, डाक एवं संचार व्यवस्था के विकास ने दोनों क्षेत्रों के आर्थिक एकीकरण को और मजबूत किया, यद्यपि इनका मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति था। 1937 में प्रशासनिक सुविधा के लिए बर्मा को ब्रिटिश भारत से अलग कर एक स्वतंत्र उपनिवेश बना दिया गया, किन्तु दोनों क्षेत्रों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय संबंध निरंतर बने रहे। स्वतंत्रता के पश्चात भी सीमा, व्यापार, प्रवासन, सुरक्षा सहयोग तथा पूर्वोत्तर भारत से जुड़े सामरिक मुद्दों पर औपनिवेशिक विरासत का प्रभाव भारत–म्यांमार संबंधों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस प्रकार ब्रिटिश भारत और बर्मा के संबंध प्रत्यक्ष औपनिवेशिक

शासन, प्रशासनिक एकीकरण, आर्थिक दोहन, सामरिक हितों तथा जनसंख्या प्रवासन पर आधारित थे, जिन्होंने दोनों देशों के आधुनिक संबंधों की ऐतिहासिक आधारशिला तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[18]

ब्रिटिश भारत और अफगानिस्तान के संबंध औपनिवेशिक काल में मुख्यतः सामरिक, राजनीतिक तथा कूटनीतिक हितों पर आधारित थे। उन्नीसवीं शताब्दी में मध्य एशिया में ब्रिटेन और रूस के बीच प्रभुत्व स्थापित करने की प्रतिस्पर्धा, जिसे 'ग्रेट गेम' के नाम से जाना जाता है, ने अफगानिस्तान को दोनों शक्तियों के बीच एक महत्वपूर्ण सामरिक क्षेत्र बना दिया। ब्रिटिश साम्राज्य अफगानिस्तान को भारत की उत्तर–पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के लिए एक *'बफर राज्य'* के रूप में विकसित करना चाहता था, ताकि रूसी प्रभाव को भारतीय उपमहाद्वीप तक पहुँचने से रोका जा सके। इसी उद्देश्य से ब्रिटिश भारत और अफगानिस्तान के मध्य तीन आंग्ल–अफगान युद्ध (1839–42, 1878–80 तथा 1919) हुए, जिन्होंने दोनों देशों के संबंधों को गहराई से प्रभावित किया। यद्यपि ब्रिटिश सेना को प्रारम्भिक संघर्षों में गंभीर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, फिर भी द्वितीय आंग्ल–अफगान युद्ध के बाद 1879 की गंडामक संधि के माध्यम से ब्रिटिशों ने अफगानिस्तान की विदेश नीति पर महत्वपूर्ण प्रभाव स्थापित किया। इसके अतिरिक्त 1893 में सर मॉर्टिमर डूरंड द्वारा निर्धारित डूरंड रेखा ने ब्रिटिश भारत और अफगानिस्तान के बीच सीमा का निर्धारण किया, जो आज भी क्षेत्रीय राजनीति और भारत–अफगानिस्तान–पाकिस्तान संबंधों में विवाद का प्रमुख विषय बनी हुई है।[19] ब्रिटिश शासन ने अफगानिस्तान में प्रत्यक्ष शासन स्थापित करने के बजाय अप्रत्यक्ष प्रभाव, कूटनीतिक दबाव तथा सामरिक समझौतों की नीति अपनाई। व्यापार, सीमावर्ती जनजातीय संपर्क तथा सामरिक मार्गों पर नियंत्रण भी ब्रिटिश नीति के महत्वपूर्ण अंग थे। 1919 के तृतीय आंग्ल–अफगान युद्ध के बाद अफगानिस्तान ने अपनी विदेश नीति पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त किया और स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उभरा। स्वतंत्रता के पश्चात भी भारत–अफगानिस्तान संबंधों में सुरक्षा, सीमा, क्षेत्रीय स्थिरता, मध्य एशिया से संपर्क तथा सामरिक सहयोग जैसे अनेक मुद्दों पर औपनिवेशिक विरासत का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस प्रकार ब्रिटिश भारत और अफगानिस्तान के संबंध प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन की अपेक्षा सामरिक प्रतिस्पर्धा, कूटनीतिक हस्तक्षेप, सीमा–निर्धारण तथा क्षेत्रीय शक्ति–संतुलन पर आधारित थे, जिन्होंने आधुनिक दक्षिण एशियाई भू–राजनीति तथा भारत–अफगानिस्तान संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को गहराई से प्रभावित किया।[20]

ब्रिटिश भारत और तिब्बत के संबंध औपनिवेशिक काल में मुख्यतः सामरिक, कूटनीतिक, व्यापारिक तथा भू–राजनीतिक हितों पर आधारित थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मध्य एशिया में ब्रिटेन और रूस के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा तथा चीन की भूमिका के कारण तिब्बत ब्रिटिश साम्राज्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया। ब्रिटिश सरकार तिब्बत को भारत की उत्तरी सीमा की सुरक्षा तथा चीन और रूस के प्रभाव को संतुलित करने वाले एक सामरिक क्षेत्र के रूप में देखती थी।[21] इसी उद्देश्य से 1903–04 में कर्नल फ्रांसिस यंगहसबैंड के नेतृत्व में ब्रिटिश सैन्य अभियान तिब्बत भेजा गया, जिसके परिणामस्वरूप 1904 की ल्हासा संधि संपन्न हुई। इस संधि के माध्यम से ब्रिटिशों को तिब्बत में व्यापारिक केंद्र स्थापित करने, व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने तथा सीमित राजनीतिक प्रभाव स्थापित करने का अवसर मिला।[22] यद्यपि तिब्बत पर प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन कभी स्थापित नहीं हुआ, फिर भी ब्रिटिश भारत ने उसकी विदेश नीति और सीमावर्ती व्यापार पर प्रभाव बनाए रखने का प्रयास किया। 1914 के शिमला सम्मेलन में ब्रिटिश भारत, तिब्बत और चीन के प्रतिनिधियों के बीच सीमा–निर्धारण पर विचार हुआ, जिसमें मैकमोहन रेखा का प्रस्ताव रखा गया। यद्यपि चीन ने इस समझौते को स्वीकार नहीं किया, फिर भी यह रेखा बाद में भारत–चीन सीमा विवाद का प्रमुख आधार बनी।[23] औपनिवेशिक काल में भारत और तिब्बत के बीच ऊन, नमक, चाय तथा अन्य वस्तुओं का व्यापार हिमालयी दर्रों के माध्यम से निरंतर चलता रहा और सांस्कृतिक तथा धार्मिक संपर्क भी बने रहे। स्वतंत्रता के पश्चात तिब्बत की राजनीतिक स्थिति में आए परिवर्तनों तथा भारत–चीन संबंधों के विकास के कारण औपनिवेशिक काल में निर्मित अनेक सीमाई और सामरिक प्रश्न आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। इस प्रकार ब्रिटिश भारत और तिब्बत के संबंध प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन के बजाय सामरिक प्रतिस्पर्धा, व्यापारिक हितों, कूटनीतिक हस्तक्षेप तथा सीमा–निर्धारण की औपनिवेशिक नीतियों पर आधारित थे, जिन्होंने आधुनिक भारत–तिब्बत तथा भारत–चीन संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को गहराई से प्रभावित किया।[24]

औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश भारत दक्षिण एशिया के व्यापारिक एवं आर्थिक नेटवर्क का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र था, जिसका निर्माण और विस्तार मुख्यतः ब्रिटिश साम्राज्य के आर्थिक, सामरिक तथा राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिए किया गया। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन से लेकर प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन तक भारत को एक ऐसे औपनिवेशिक आर्थिक ढाँचे में परिवर्तित किया गया, जहाँ उत्पादन, वितरण, व्यापार, परिवहन और वित्तीय व्यवस्था का संचालन स्थानीय आवश्यकताओं के बजाय ब्रिटेन की औद्योगिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाता था।[25] ब्रिटिश नीति का मूल उद्देश्य भारत तथा दक्षिण एशिया के अन्य क्षेत्रों को कच्चे माल के प्रमुख स्रोत, तैयार माल के विशाल उपभोक्ता बाजार तथा निवेश के सुरक्षित क्षेत्र के रूप में विकसित करना था। इसके लिए रेलमार्ग, सड़कें, बंदरगाह, नहरें, डाक एवं तार व्यवस्था, नदी परिवहन तथा समुद्री व्यापार मार्गों का व्यापक विकास किया गया, जिससे विभिन्न क्षेत्रों को आपस में जोड़कर संसाधनों का तीव्र परिवहन, निर्यात तथा प्रशासनिक नियंत्रण सुनिश्चित किया जा सके। यद्यपि इन आधारभूत

संरचनाओं ने परिवहन और संचार के क्षेत्र में आधुनिकता का मार्ग प्रशस्त किया, किंतु उनका प्रमुख उद्देश्य स्थानीय आर्थिक विकास के बजाय ब्रिटिश उद्योगों को निरंतर कच्चा माल उपलब्ध कराना तथा भारतीय बाजारों में ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं की निर्बाध पहुँच सुनिश्चित करना था।[26]

भारत से कपास, जूट, चाय, नील, अफीम, मसाले, चावल, गेहूँ, गन्ना, कोयला, लौह अयस्क, चमड़ा, कपास का धागा तथा अन्य कृषि एवं खनिज उत्पादों का बड़े पैमाने पर निर्यात किया जाता था, जबकि ब्रिटेन से सूती एवं ऊनी वस्त्र, मशीनें, लोहे के उपकरण, औद्योगिक मशीनरी, रसायन तथा अन्य निर्मित वस्तुओं का आयात होता था। इस असमान व्यापारिक व्यवस्था के कारण भारत का पारंपरिक हस्तशिल्प, विशेषकर वस्त्र उद्योग, गंभीर रूप से प्रभावित हुआ। बंगाल, बनारस, ढाका, मुर्शिदाबाद तथा दक्षिण भारत के अनेक प्रसिद्ध हस्तकरघा उद्योग ब्रिटिश मशीन–निर्मित वस्त्रों की प्रतिस्पर्धा में धीरे–धीरे नष्ट होने लगे। परिणामस्वरूप लाखों कारीगर बेरोजगार हुए और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर अतिरिक्त दबाव उत्पन्न हुआ।[27] औपनिवेशिक शासन ने भूमि–राजस्व व्यवस्थाओं स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी तथा महालवाड़ी प्रणाली के माध्यम से कृषि को नकदी फसलों के उत्पादन की ओर प्रेरित किया, जिससे खाद्यान्न उत्पादन की अपेक्षा निर्यातोन्मुख कृषि को बढ़ावा मिला। इसके कारण किसानों की आर्थिक निर्भरता बढ़ी, ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई तथा अनेक क्षेत्रों में बार–बार अकाल और खाद्य संकट की स्थिति उत्पन्न हुई। ब्रिटिश भारत के माध्यम से नेपाल, भूटान, बर्मा (म्यांमार), श्रीलंका (सीलोन), तिब्बत तथा अफगानिस्तान जैसे पड़ोसी क्षेत्रों के साथ व्यापारिक संबंधों को भी ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के अनुरूप व्यवस्थित किया गया। नेपाल और भूटान से लकड़ी, औषधीय जड़ी–बूटियाँ, इलायची, ऊन तथा अन्य वन उत्पाद, तिब्बत से ऊन, नमक, पशु–उत्पाद एवं घोड़े, बर्मा से चावल, सागौन, तेल तथा वन–संपदा, श्रीलंका से चाय, कॉफी, रबर और नारियल उत्पाद तथा अफगानिस्तान से सूखे मेवे, घोड़े, ऊन और अन्य व्यापारिक वस्तुएँ भारत के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय बाजारों तक पहुँचती थीं। इस प्रकार ब्रिटिश भारत संपूर्ण दक्षिण एशिया को जोड़ने वाले एक व्यापक औपनिवेशिक व्यापारिक नेटवर्क का केंद्र बन गया, जहाँ प्रत्येक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश साम्राज्य की आवश्यकताओं के अनुसार पुनर्गठित किया गया। सीमावर्ती व्यापार मार्गों, सीमा शुल्क व्यवस्था तथा बंदरगाहों पर ब्रिटिश नियंत्रण ने दक्षिण एशिया के आर्थिक प्रवाह को पूर्णतः साम्राज्यवादी हितों के अधीन कर दिया।[28]

औपनिवेशिक शासन ने चाय, कॉफी, रबर, जूट तथा नील जैसे बागान उद्योगों के विकास को विशेष प्रोत्साहन दिया। इन उद्योगों में श्रमिकों की भारी आवश्यकता को पूरा करने के लिए भारत से लाखों श्रमिकों को श्रीलंका, बर्मा, मलाया तथा अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में भेजा गया। इस श्रम प्रवासन ने दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों के बीच आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक संपर्कों को तो बढ़ाया, किंतु इसके साथ ही श्रमिकों के शोषण, कम मजदूरी, कठिन कार्य परिस्थितियों तथा सामाजिक असमानताओं की समस्याएँ भी उत्पन्न हुईं। ब्रिटिश शासन ने आधुनिक बैंकिंग प्रणाली, बीमा कंपनियों, विनिमय व्यवस्था तथा औपनिवेशिक वित्तीय संस्थाओं का भी विकास किया, जिनका उद्देश्य मुख्यतः व्यापारिक पूँजी के प्रवाह को नियंत्रित करना और ब्रिटिश निवेश को सुरक्षित बनाना था। भारत के प्रमुख बंदरगाह कलकत्ता, बंबई और मद्रास वैश्विक औपनिवेशिक व्यापार के महत्वपूर्ण केंद्र बन गए, जहाँ से दक्षिण एशिया के विभिन्न क्षेत्रों का व्यापार संचालित होता था।[29] इस व्यापक औपनिवेशिक आर्थिक नेटवर्क के परिणामस्वरूप दक्षिण एशिया की अर्थव्यवस्था ब्रिटिश पूँजी, विदेशी व्यापार तथा निर्यात–आधारित कृषि पर अत्यधिक निर्भर हो गई। संसाधनों का असंतुलित दोहन, स्थानीय उद्योगों का पतन, पूँजी का निरंतर बाह्य प्रवाह, क्षेत्रीय असमानताओं का विस्तार तथा आर्थिक निर्भरता की संरचना औपनिवेशिक शासन की प्रमुख विशेषताएँ बन गईं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी इन आर्थिक संरचनाओं का प्रभाव भारत तथा दक्षिण एशिया के देशों की व्यापारिक नीतियों, परिवहन नेटवर्क, सीमा–पार व्यापार, श्रम प्रवासन, औद्योगिक विकास तथा क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वर्तमान में दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग, अंतर–देशीय व्यापार, संपर्क परियोजनाएँ तथा आर्थिक एकीकरण के अनेक प्रयास उसी औपनिवेशिक विरासत की पृष्ठभूमि में विकसित हुए हैं। इस प्रकार औपनिवेशिक व्यापार एवं आर्थिक नेटवर्क ने न केवल दक्षिण एशिया की आर्थिक संरचना, उत्पादन प्रणाली, व्यापारिक संबंधों और संसाधनों के उपयोग को गहराई से प्रभावित किया, बल्कि आधुनिक भारत–दक्षिण एशिया आर्थिक संबंधों, क्षेत्रीय संपर्कों तथा विकास की दिशा को भी दीर्घकालिक रूप से आकार प्रदान किया।[30]

औपनिवेशिक काल में श्रम प्रवासन और सांस्कृतिक संबंध भारत तथा दक्षिण एशिया के अन्य देशों के बीच संपर्क का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आधार बने। ब्रिटिश साम्राज्य ने अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए भारत को सस्ते और प्रचुर श्रम–बल के प्रमुख स्रोत के रूप में विकसित किया तथा बड़ी संख्या में भारतीय श्रमिकों को श्रीलंका (सीलोन), बर्मा (म्यांमार), मलाया, फिजी, मॉरीशस तथा अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में कृषि, बागान, रेल निर्माण, खनन, बंदरगाहों और सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए भेजा। दक्षिण एशिया के संदर्भ में विशेष रूप से श्रीलंका के चाय और रबर बागानों तथा बर्मा के चावल उत्पादक क्षेत्रों में भारतीय श्रमिकों की व्यापक भागीदारी रही। तमिलनाडु, बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल और ओडिशा जैसे क्षेत्रों से हजारों श्रमिक बेहतर आजीविका की आशा में अथवा औपनिवेशिक श्रम–नीतियों के कारण इन क्षेत्रों में पहुँचे। इनके अतिरिक्त भारतीय व्यापारी, शिक्षक, प्रशासनिक अधिकारी, सैनिक, चिकित्सक तथा लघु उद्यमी भी दक्षिण एशिया के विभिन्न भागों में जाकर बसने लगे, जिससे क्षेत्रीय आर्थिक और सामाजिक संपर्कों का विस्तार हुआ। ब्रिटिश

शासन ने श्रम प्रवासन को सुनियोजित ढंग से प्रोत्साहित किया, क्योंकि इससे बागान अर्थव्यवस्था, परिवहन नेटवर्क तथा औपनिवेशिक उत्पादन प्रणाली को निरंतर श्रम उपलब्ध होता था।[31]

श्रम प्रवासन के परिणामस्वरूप भारत और दक्षिण एशिया के देशों के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान की प्रक्रिया भी तीव्र हुई। प्रवासी भारतीय अपने साथ भाषा, धर्म, रीति–रिवाज, लोक–संस्कृति, खान–पान, वेशभूषा, संगीत, नृत्य, साहित्य तथा धार्मिक परंपराएँ लेकर गए, जिससे स्थानीय समाजों के साथ एक नई सांस्कृतिक अंतःक्रिया विकसित हुई। श्रीलंका में भारतीय तमिल समुदाय, बर्मा में भारतीय मूल के व्यापारी और श्रमिक तथा नेपाल और भूटान के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले भारतीय समुदाय इस सांस्कृतिक समन्वय के प्रमुख उदाहरण हैं। मंदिरों, गुरुद्वारों, मस्जिदों, विद्यालयों तथा सामाजिक संस्थाओं की स्थापना के माध्यम से भारतीय समुदायों ने अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हुए स्थानीय समाज के साथ भी घनिष्ठ संबंध स्थापित किए। दूसरी ओर, स्थानीय भाषाओं, भोजन, लोककलाओं तथा सामाजिक परंपराओं का प्रभाव भी भारतीय प्रवासियों पर पड़ा, जिससे बहुसांस्कृतिक समाजों का विकास हुआ। इस प्रक्रिया ने दक्षिण एशिया में साझा सांस्कृतिक विरासत, पारिवारिक संबंधों, अंतर–समुदायिक संपर्कों तथा धार्मिक सह–अस्तित्व की भावना को मजबूत किया।[32]

हालाँकि औपनिवेशिक शासन के दौरान श्रम प्रवासन अनेक बार शोषण, असमान मजदूरी, कठिन कार्य परिस्थितियों, नस्लीय भेदभाव तथा सामाजिक असुरक्षा से भी जुड़ा रहा। बागानों और औद्योगिक क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों को सीमित अधिकार प्राप्त थे तथा उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर बनी रही। इसके बावजूद प्रवासी समुदायों ने स्थानीय अर्थव्यवस्था, व्यापार, शिक्षा, प्रशासन और सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय मूल के समुदायों की नागरिकता, पहचान, राजनीतिक प्रतिनिधित्व तथा श्रमिक अधिकारों से जुड़े प्रश्न भारत और श्रीलंका, भारत और म्यांमार तथा अन्य दक्षिण एशियाई देशों के द्विपक्षीय संबंधों के महत्वपूर्ण विषय बने। आज भी दक्षिण एशिया में भाषाई समानताएँ, धार्मिक परंपराएँ, पारिवारिक रिश्ते, सांस्कृतिक उत्सव, सीमा–पार विवाह, साहित्य, संगीत, सिनेमा और लोक–संस्कृति में दिखाई देने वाली निकटता औपनिवेशिक काल के श्रम प्रवासन और ऐतिहासिक संपर्कों की स्थायी विरासत है। इस प्रकार श्रम प्रवासन केवल आर्थिक आवश्यकता का परिणाम नहीं था, बल्कि उसने भारत और दक्षिण एशिया के देशों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई और मानवीय संबंधों को गहराई प्रदान करते हुए क्षेत्रीय एकता और साझा सांस्कृतिक पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[33]

उन्नीसवीं शताब्दी में दक्षिण एशिया की राजनीति और भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंधों को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक ब्रिटिश साम्राज्य और रूसी साम्राज्य के मध्य मध्य एशिया में प्रभुत्व स्थापित करने की प्रतिस्पर्धा थी, जिसे इतिहास में *''ग्रेट गेम''* के नाम से जाना जाता है। इस प्रतिस्पर्धा का मूल उद्देश्य मध्य एशिया, अफगानिस्तान, तिब्बत तथा हिमालयी क्षेत्रों पर राजनीतिक, सामरिक और आर्थिक प्रभाव स्थापित करना था। ब्रिटिश साम्राज्य को आशंका थी कि यदि रूस मध्य एशिया के माध्यम से अफगानिस्तान अथवा हिमालयी क्षेत्रों तक पहुँच गया, तो भारत में उसके औपनिवेशिक शासन की सुरक्षा को गंभीर खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने भारत की उत्तर–पश्चिमी तथा उत्तरी सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिए अनेक सामरिक और कूटनीतिक उपाय अपनाए। इसी नीति के अंतर्गत अफगानिस्तान, नेपाल, भूटान और तिब्बत को प्रत्यक्ष रूप से अपने अधीन करने के बजाय उन्हें *'बफर राज्य'* के रूप में विकसित करने का प्रयास किया गया, ताकि वे ब्रिटिश भारत और अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच सुरक्षा कवच का कार्य कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ब्रिटिशों ने अनेक संधियाँ, कूटनीतिक समझौते, सैन्य अभियान तथा सीमा–निर्धारण की प्रक्रियाएँ अपनाईं, जिनका प्रभाव आज भी दक्षिण एशिया की भू–राजनीति में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।[34]

ग्रेट गेम के दौरान ब्रिटिश भारत की विदेश नीति का प्रमुख लक्ष्य साम्राज्यवादी हितों की रक्षा, व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण तथा सामरिक क्षेत्रों में प्रभाव बनाए रखना था। इसी कारण ब्रिटिशों ने तीन आंग्ल–अफगान युद्ध लड़े, तिब्बत में 1903–04 का यंगहसबैंड अभियान संचालित किया, नेपाल और भूटान के साथ विशेष संधियाँ कीं तथा हिमालयी क्षेत्रों में अपने राजनीतिक प्रभाव को निरंतर बढ़ाया। 1893 की डूरंड रेखा तथा 1914 की मैकमोहन रेखा जैसी सीमाओं का निर्धारण भी इसी सामरिक सोच का परिणाम था, जिनसे अनेक सीमा–विवादों की नींव पड़ी। ब्रिटिश साम्राज्य ने गुप्तचर तंत्र, सर्वेक्षण अभियानों, मानचित्रण, राजनयिक मिशनों तथा स्थानीय शासकों के साथ समझौतों के माध्यम से पूरे क्षेत्र में अपनी रणनीतिक स्थिति को मजबूत किया। साथ ही, व्यापारिक मार्गों, दर्रों, बंदरगाहों और संचार नेटवर्क पर नियंत्रण स्थापित कर साम्राज्यवादी प्रभाव को स्थायी रूप देने का प्रयास किया गया। इस प्रतिस्पर्धा का प्रभाव केवल राजनीतिक और सैन्य क्षेत्र तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने दक्षिण एशिया की आर्थिक नीतियों, सीमाई संरचनाओं, प्रशासनिक व्यवस्थाओं तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों को भी गहराई से प्रभावित किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल और भूटान से जुड़े अनेक सीमा–विवाद, सुरक्षा संबंधी चुनौतियाँ तथा सामरिक प्रतिस्पर्धाएँ उसी औपनिवेशिक कूटनीति और ग्रेट गेम की ऐतिहासिक विरासत से प्रभावित दिखाई देती हैं। इस प्रकार साम्राज्यवादी कूटनीति और ग्रेट गेम ने न केवल ब्रिटिश भारत

की विदेश नीति को आकार दिया, बल्कि आधुनिक दक्षिण एशिया की भू–राजनीति, सीमा–निर्धारण, क्षेत्रीय शक्ति–संतुलन तथा भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंधों की दीर्घकालिक दिशा भी निर्धारित की।[35]

औपनिवेशिक काल में दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय पहचान और सीमा–निर्माण की प्रक्रिया पर ब्रिटिश साम्राज्य की नीतियों का गहरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश शासन ने प्रशासनिक सुविधा, सामरिक सुरक्षा तथा आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए विभिन्न क्षेत्रों की सीमाओं का निर्धारण किया, जिससे आधुनिक दक्षिण एशिया की राजनीतिक और भौगोलिक संरचना का विकास हुआ। भारत, नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान, तिब्बत, बर्मा (म्यांमार) तथा श्रीलंका (सीलोन) के साथ संबंधों को ब्रिटिश साम्राज्य ने अपने सामरिक हितों के अनुरूप पुनर्गठित किया। सीमा–निर्धारण की इस प्रक्रिया में स्थानीय सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई तथा जातीय वास्तविकताओं की अपेक्षा साम्राज्यवादी आवश्यकताओं को अधिक महत्व दिया गया। परिणामस्वरूप अनेक पारंपरिक व्यापारिक मार्ग, सांस्कृतिक संपर्क, जनजातीय क्षेत्र तथा ऐतिहासिक रूप से जुड़े समुदाय कृत्रिम राजनीतिक सीमाओं से विभाजित हो गए। 1816 की सुगौली संधि, 1865 की सिनचुला संधि, 1893 की डूरंड रेखा तथा 1914 की मैकमोहन रेखा जैसे समझौते इसी औपनिवेशिक सीमा–निर्माण की प्रमुख घटनाएँ थीं, जिन्होंने आधुनिक दक्षिण एशिया की सीमाओं और अंतर–राज्यीय संबंधों की आधारशिला रखी। ब्रिटिश शासन ने नेपाल और भूटान को बफर राज्यों के रूप में विकसित किया, अफगानिस्तान को उत्तर–पश्चिमी सुरक्षा नीति का अंग बनाया तथा तिब्बत के साथ व्यापारिक और सामरिक संबंधों को नियंत्रित करने का प्रयास किया। इसी प्रकार 1886 में बर्मा को ब्रिटिश भारत का भाग बनाया गया और 1937 में उसे अलग उपनिवेश का दर्जा दिया गया, जिससे क्षेत्रीय राजनीतिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए।[36]

औपनिवेशिक सीमा–निर्माण का प्रभाव केवल राजनीतिक सीमाओं तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने क्षेत्रीय पहचान, सांस्कृतिक संबंधों, आर्थिक संपर्कों तथा सामाजिक संरचनाओं को भी गहराई से प्रभावित किया। अनेक समुदाय, जो सदियों से मुक्त रूप से आवागमन, व्यापार और सांस्कृतिक आदान–प्रदान करते थे, नई सीमाओं के कारण विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित हो गए। इसके बावजूद भाषा, धर्म, संस्कृति, लोक परंपराएँ, पारिवारिक संबंध तथा सीमा–पार व्यापार के माध्यम से दक्षिण एशिया की साझा क्षेत्रीय पहचान बनी रही। स्वतंत्रता और विभाजन के पश्चात औपनिवेशिक काल में निर्मित सीमाएँ आधुनिक राष्ट्र–राज्यों की अंतरराष्ट्रीय सीमाओं में परिवर्तित हो गईं, जिनसे सीमा–विवाद, प्रवासन, सुरक्षा, जल संसाधन, सीमा–पार व्यापार तथा क्षेत्रीय सहयोग जैसी अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न हुईं। भारत–नेपाल की खुली सीमा, भारत–भूटान की विशेष साझेदारी, भारत–बांग्लादेश सीमा, भारत–म्यांमार संपर्क, भारत–चीन सीमा विवाद तथा भारत–पाकिस्तान संबंधों की अनेक जटिलताएँ इसी औपनिवेशिक सीमा–निर्माण की ऐतिहासिक विरासत से जुड़ी हुई हैं। इस प्रकार औपनिवेशिक काल में विकसित क्षेत्रीय पहचान एवं सीमा–निर्माण की प्रक्रिया ने दक्षिण एशिया की राजनीतिक भूगोल, राष्ट्रीय पहचान, अंतर–राज्यीय संबंधों तथा क्षेत्रीय सहयोग की दिशा को गहराई से प्रभावित किया और आज भी यह क्षेत्रीय राजनीति एवं कूटनीति का एक महत्वपूर्ण आधार बनी हुई है।[37]

औपनिवेशिक शासन की विरासत ने स्वतंत्रता–उत्तर दक्षिण एशिया की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा कूटनीतिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा निर्मित प्रशासनिक व्यवस्था, न्यायिक प्रणाली, नौकरशाही, रेलवे, बंदरगाह, संचार नेटवर्क तथा शिक्षा प्रणाली स्वतंत्रता के पश्चात भी अधिकांश दक्षिण एशियाई देशों में शासन और विकास के प्रमुख आधार बने रहे। साथ ही, औपनिवेशिक काल में निर्धारित सीमाएँ, सीमा–निर्धारण संबंधी संधियाँ तथा सामरिक नीतियाँ आधुनिक राष्ट्र–राज्यों की अंतरराष्ट्रीय सीमाओं का आधार बनीं, जिनके कारण अनेक सीमा–विवाद और सुरक्षा संबंधी चुनौतियाँ आज भी विद्यमान हैं। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, म्यांमार तथा अफगानिस्तान के बीच संबंधों में औपनिवेशिक काल की नीतियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। विशेष रूप से 1947 का भारत–विभाजन, विस्थापन, सांप्रदायिक तनाव, सीमाई विवाद तथा कश्मीर प्रश्न जैसी समस्याएँ औपनिवेशिक शासन की जटिल विरासत का परिणाम मानी जाती हैं। इसी प्रकार डूरंड रेखा, मैकमोहन रेखा तथा अन्य औपनिवेशिक सीमा–निर्धारण आज भी क्षेत्रीय राजनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों को प्रभावित करते हैं।[38]

आर्थिक दृष्टि से औपनिवेशिक शासन ने दक्षिण एशिया की अर्थव्यवस्थाओं को निर्यातोन्मुख कृषि, कच्चे माल के उत्पादन तथा विदेशी व्यापार पर निर्भर बना दिया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अधिकांश देशों ने योजनाबद्ध आर्थिक विकास, औद्योगीकरण, कृषि सुधार तथा आत्मनिर्भरता की नीतियाँ अपनाईं, फिर भी औपनिवेशिक आर्थिक असमानताओं, क्षेत्रीय विषमताओं तथा अविकसित औद्योगिक संरचना की चुनौतियाँ लंबे समय तक बनी रहीं। सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर अंग्रेजी भाषा, आधुनिक शिक्षा, विधि व्यवस्था, संसदीय लोकतंत्र तथा प्रशासनिक संस्थाओं का प्रभाव आज भी दक्षिण एशिया के देशों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। दूसरी ओर, औपनिवेशिक काल में विकसित श्रम प्रवासन, व्यापारिक संपर्क तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान ने भारत और उसके पड़ोसी देशों के बीच ऐतिहासिक निकटता को बनाए रखा।[39] स्वतंत्रता के पश्चात दक्षिण एशियाई देशों ने क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न पहलें कीं, जिनमें दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) का गठन एक महत्वपूर्ण कदम था। इसके बावजूद सीमा–विवाद, आतंकवाद, जल संसाधनों का बँटवारा, अवैध प्रवासन, जातीय संघर्ष तथा सामरिक प्रतिस्पर्धा जैसी समस्याएँ क्षेत्रीय सहयोग के समक्ष

प्रमुख चुनौतियाँ बनी हुई हैं। वर्तमान समय में 'पड़ोसी प्रथम' नीति, बीबीआईएन, बिम्सटेक, अंतर–क्षेत्रीय संपर्क परियोजनाएँ, ऊर्जा सहयोग, व्यापारिक एकीकरण तथा सांस्कृतिक कूटनीति जैसे प्रयास औपनिवेशिक विरासत से उत्पन्न चुनौतियों को कम करने और क्षेत्रीय सहयोग को सुदृढ़ करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इस प्रकार औपनिवेशिक विरासत ने स्वतंत्रता–उत्तर दक्षिण एशिया की राजनीतिक सीमाओं, प्रशासनिक संस्थाओं, आर्थिक संरचनाओं, सामाजिक संबंधों तथा कूटनीतिक प्राथमिकताओं को दीर्घकालिक रूप से प्रभावित किया है, और आधुनिक भारत–दक्षिण एशिया संबंधों को समझने के लिए इस ऐतिहासिक विरासत का सम्यक् अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।[40]

भारत–दक्षिण एशिया संबंधों का औपनिवेशिक आयाम यह स्पष्ट करता है कि ब्रिटिश शासन ने केवल क्षेत्र की राजनीतिक संरचना को ही नहीं, बल्कि उसकी आर्थिक व्यवस्था, सीमा–निर्माण, कूटनीतिक संबंधों, श्रम प्रवासन, सांस्कृतिक संपर्क तथा सामरिक सोच को भी गहराई से प्रभावित किया। औपनिवेशिक नीतियों के परिणामस्वरूप निर्मित सीमाएँ, व्यापारिक नेटवर्क और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ स्वतंत्रता के पश्चात भी दक्षिण एशियाई देशों के पारस्परिक संबंधों का आधार बनी रहीं। यद्यपि स्वतंत्र राष्ट्रों ने सहयोग, विकास और क्षेत्रीय एकीकरण की दिशा में अनेक प्रयास किए हैं, फिर भी अनेक समकालीन चुनौतियाँ औपनिवेशिक विरासत से जुड़ी हुई हैं। इसलिए भारत–दक्षिण एशिया संबंधों की वर्तमान प्रकृति और भविष्य की संभावनाओं को समझने के लिए औपनिवेशिक अनुभवों, ऐतिहासिक प्रक्रियाओं तथा क्षेत्रीय अंतर्संबंधों का समग्र अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

References

1. अली, तारीक, *द क्लैश ऑफ फंडामेंटलिज़्म्सः क्रूसेड्स, जिहाद्स एंड मॉडर्निटी,* वर्सो पब्लिकेशन्स, लंदन, 2002, पृ. 412–413
2. बैली, सी. ए., *इंडियन सोसाइटी एंड द मेकिंग ऑफ द ब्रिटिश एम्पायर,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1988, पृ. 248.
3. वही, पृ. 540.
4. बोस, सुगत एवं जलाल, आयशा, *मॉडर्न साउथ एशियाः हिस्ट्री, कल्चर,* पॉलिटिकल इकॉनॉमी (चतुर्थ संस्करण), रूटलेज, लंदन, 2018, पृ. 294.
5. वही, पृ. 356.
6. ब्राउन, जूडिथ एम., *मॉडर्न इंडियाः द ओरिजिन्स ऑफ एन एशियन डेमोक्रेसी,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1994, पृ. 412.
7. चटर्जी, पार्थ, *द नेशन एंड इट्स फ्रैगमेंट्स,* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 1993, पृ. 296–298
8. डेलरिम्पल, विलियम, *रिटर्न ऑफ ए किंगः द बैटल फॉर अफगानिस्तान,* ब्लूम्सबरी, लंदन, 2013, पृ. 576–578
9. डर्क्स, निकोलस बी., *कास्ट्स ऑफ माइंडः कॉलोनियलिज़्म एंड द मेकिंग ऑफ मॉडर्न इंडिया,* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 2001, पृ. 372.
10. चटर्जी, पार्थ, *पूर्वोक्त,* पृ. 248.
11. फिशर, माइकल एच., *इनडायरेक्ट रूल इन इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1997, पृ. 214–215.
12. घोष, पार्थ एस., *कोऑपरेशन एंड कॉन्फ्लिक्ट इन साउथ एशिया,* मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1989, पृ. 328.
13. गोपाल, सर्वपल्ली, *ब्रिटिश पॉलिसी इन इंडिया, 1858–1905,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1965, पृ. 286.
14. गुहा, रणजीत, *एलीमेंट्री एस्पेक्ट्स ऑफ पीजेंट इंसर्जेन्सी इन कॉलोनियल इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1983, पृ. 364–365.
15. जलाल, आयशा, *द सोल स्पोक्समैनः जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1985, पृ. 328–330.
16. जलाल, आयशा, *डेमोक्रेसी एंड ऑथोरिटेरियनिज़्म इन साउथ एशिया,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1995, पृ. 312.
17. की, जॉन, *इंडियाः ए हिस्ट्री,* हार्पर कॉलिन्स, लंदन, 2000, पृ. 742.
18. कुमार, धर्मा (सम्पा.), *द कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खण्ड–2,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1983, पृ. 1048–1050.
19. लुडेन, डेविड, *इंडिया एंड साउथ एशियाः ए शॉर्ट हिस्ट्री,* वनवर्ल्ड पब्लिकेशन्स, ऑक्सफोर्ड, 2002, पृ. 256.
20. मार्शल, पी. जे. (सम्पा.), *द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ द ब्रिटिश एम्पायर, खण्ड–2,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1998, पृ. 684–685.

21. गुहा, रणजीत, *पूर्वोक्त,* पृ. 372.
22. मेटकाफ, थॉमस आर., *आइडियोलॉजीज ऑफ द राज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,* कैम्ब्रिज, 1995, पृ. 256.
23. मिश्र, पतित पावन, *द हिस्ट्री ऑफ नेपाल,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010, पृ. 412.
24. नायर, बलदेव राज, *इंडियाज फॉरेन पॉलिसी एंड साउथ एशिया,* विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1976, पृ. 296.
25. पांडेय, ज्ञानेन्द्र, *रिमेम्बरिंग पार्टिशन,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2001, पृ. 272–273.
26. गुहा, रणजीत, *पूर्वोक्त,* पृ. 324.
27. रॉब, पीटर, *अ हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* पालग्रेव मैकमिलन, लंदन, 2002, पृ. 384.
28. सरकार, सुमित, *मॉडर्न इंडियाः 1885–1947,* मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, 1983, पृ. 486.
29. सेन, शैलेन्द्र नाथ, *एंग्लो–नेपालीज रिलेशन्स,* के. पी. बागची एंड कम्पनी, नई दिल्ली, 1993, पृ. 258.
30. सिंह, नागेन्द्र कुमार (सम्पा.), *साउथ एशियाः हिस्ट्री एंड कल्चर,* अनमोल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 468.
31. स्टीन, बर्टन, *अ हिस्ट्री ऑफ इंडिया (द्वितीय संस्करण),* वाइली–ब्लैकवेल, ऑक्सफोर्ड, 2010, पृ. 472–473.
32. वही, पृ. 352.
33. टैलबॉट, इयान एवं सिंह, *गुरहरपाल, द पार्टिशन ऑफ इंडिया,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2009, पृ. 224.
34. थापर, रोमिला, *अर्ली इंडियाः फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए.डी. 1300,* पेंगुइन बुक्स, लंदन, 2002, पृ. 556–557.
35. व्हेल्पटन, जॉन, *अ हिस्ट्री ऑफ नेपाल,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2005, पृ. 312–313.
36. व्हाइट, निकोलस जे., *ब्रिटिश बिजनेस इन पोस्ट–कॉलोनियल मलेशिया, 1957–70,* रूटलेज, लंदन, 2009, पृ. 274.
37. वोल्पर्ट, स्टेनली, *अ न्यू हिस्ट्री ऑफ इंडिया (आठवाँ संस्करण),* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 2009, पृ. 560.
38. व्हाइट, निकोलस जे., *पूर्वोक्त,* पृ. 390–392.
39. चंद्र, बिपन, मुखर्जी, *मृदुला, मुखर्जी, आदित्य, पनिक्कर, के. एन. एवं महाजन, सुचेता, इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस,* पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया, नई दिल्ली, 2016, पृ. 688.
40. चंद्र, बिपन, *हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, ओरिएंट ब्लैकस्वान,* नई दिल्ली, 2009, पृ. 420–422.